INTERNATIONAL RESEARCH FELLOWS ASSOCIATION

Impact Factor – 6.625 ISSN – 2348-7143

INTERNATIONAL RESEARCH FELLOWS ASSOCIATION'S

RESEARCH JOURNEY

Multidisciplinary International E-Research Journal

PEER REFREED & INDEXED JOURNAL

October-2019 Special Issue – 200

Cotemporary Problems in India and Remidies

Guest Editor :
Dr. R. V. Shikhare
Principal
R. B. Attal Arts, Science & Commerce College,
Georai, Dist. Beed (M.S) India

Associate Editors -
Mr. H. B. Helambe
Mr. B. S. Jogdand
Mr. R. B. Kale
Mr. S. S. Nagare
Mr. R. B. Pagore

Chief Editor -
Dr. Dhanraj T. Dhangar (Yeola)

This Journal is indexed in :
- Scientific Journal Impact Factor (SJIF)
- Cosmoc Impact Factor (CIF)
- Global Impact Factor (GIF)
- International Impact Factor Services (IIFS)

For Details Visit To : www.researchjourney.net

SWATIDHAN PUBLICATIONS

65	आतंकवाद : समस्या तथा नियंत्रण	संदीप गोरे	261
66	समकालीन हिंदी कविता में स्त्री संवेदना	संतोष नागरे	265
67	हिंदी लेखिकाओ के उपन्यासों में अभिव्यक्त स्त्री विमर्श	डॉ. सुनिल डहाले	271
68	कौसल्या बैसंत्री की आत्मकथा 'दोहरा अभिशाप' में दलित नारी जीवन	डॉ. रजनी शिखरे, अशोक उघडे	275
69	विनय मिश्र की ग़ज़लो में बाजारवाद	डॉ. रजनी शिखरे	278
70	वाहरू सोनवणे की कवितांएँ ('पहाड हिलने लगा है' के संदर्भ में)	संतोष नागरे	281
	मराठी विभाग		
71	पर्यावरण प्रशासन : काळाची गरज	डॉ. व्ही. पी. सांडूर	287
72	भारतीय लोकशाही मधील 'भ्रष्ट्राचार' एक प्रबळ समस्या	डॉ. अंकुशराव चव्हाण	290
73	शेतकऱ्यांच्या आत्महत्या	भाग्यश्री पानढवळे	293
74	बीड जिल्ह्यातील इमारत बांधकाम कामगारांच्या आर्थिक स्थितीचा अभ्यास	एस. ई. भोसले	298
75	नक्षलवाद एक सामाजिक समस्या : सामाजशास्त्रीय अभ्यास	डॉ. दत्तात्रय भूताळे	304
76	शेतकरी आत्महत्या भारतीय समाजासमोरील अव्हान व उपाय योजना	टी. एस. बिडवे	308
77	नक्षलवादी चळवळीची विचारसरणी	डॉ. रजनी बोरोळे	312
78	भारतीय राजकारण आणि धर्म, जात, भाषा	डॉ. देविदास नरवाडे	318
79	मॉब लिचींग : एक गंभीर समस्या	डी.एन. रिठे	321
80	भ्रष्ट्राचार : एक विवेचन	डॉ. डी.के. ढास	325
81	दहशतवाद	डॉ. बी.एस.चव्हाण	330
82	मानसशास्त्र आणि दहशतवाद : एक आकलन	डॉ. अतुल पवार	335
83	भ्रष्टाचार : कारणे व उपाय	डॉ. भगवान वाघमारे	338
84	नक्षलवाद : भारतातील कडव्या साम्यवादी संघटनांची सशस्त्र चळवळ	डॉ. भारत बिचितकर	342
85	मराठवाड्यातील सिमांत शेतकऱ्यांच्या समस्या आणि त्यावरील उपाय	गोविंद काळे व दीपक भारती	347
86	शेतकरी आत्महत्या : कारणे आणि उपाय	डॉ. दत्तात्रय डुंबरे	350
87	नक्षलवादी चळवळीची विचारधारा आणि व्यवहार	डॉ. एस. पी. घायाळ	353
88	मराठी कादंबरी आणि अर्थकारण : विशेष संदर्भ 'फेसाटी'	डॉ. गोविंद काळे	359
89	सामुहिक हिंसाचार	डॉ. विठ्ठल जाधव	363
90	ब्रिटिशांच्या कायद्याचा भारतीय समाजावर झालेला परिणाम	सचिन पांडव, डॉ. लक्ष्मीकांत जिरेवाड	368
91	वनतोडीमुळे उदभवणाऱ्या समस्यांचे अध्ययन (संदर्भ : पवन तालुक्यातील मिन्सी या गावातील कुटुंब)	ज्योती नाकतोडे	373
92	पर्यावरणविषयक मुद्दा	डॉ. काकासाहेब पोफळे	389
93	स्वयंसहाय्यता गट आणि सशक्तीकरण : एक अवलोकन	डॉ.संतोष काकडे	383
94	शेतकऱ्यांच्या आत्महत्या	डॉ.काशिनाथ पल्लेवाड (सावळीकर)	387
95	सामाजिक समस्या आणि नव्वदोत्तरी मराठी कविता	डॉ. समिता जाधव	390
96	भारतातील दारिद्र्य	डॉ. शिवाजी पाते	395
97	जेष्ट नागरिकांच्या समस्यांचे सामाजिक निराकरण	डॉ. सुधीर येवले	400
98	भ्रष्टाचार : भारतीय समाजासमोरील एक ज्वलंत समस्या	डॉ. सुनंदा आहेर	404
99	पर्यावरण आणि भारतीय शेती	डॉ. योगेश पाटील	409
100	समकालीन राजकीय परिस्थिती आणि विरोधी पक्षाची भूमिका	डॉ. भुजंग पाटील	412

'RESEARCH JOURNEY' International Multidisciplinary E- Research Journal
Impact Factor - (SJIF) – 6.625, (CIF) - 3.452(2015), (GIF)–0.676 (2013)
Special Issue 200 : Contemporary Problems in India and Remidies
ISSN : 2348-7143
October-2019

समकालीन हिंदी कविता में स्त्री संवेदना

संतोष नागरे
सहा.प्रा.-हिंन्दी विभाग
र.भ. अट्टल महाविद्यालय,
गेवराई जि.बीड
Email - nagresantosh1@gmail.com

समकालीन हिंदी कविता सदियों से हाशिए पर रखे गये समूह की वेदना को बयान करती है। दुनिया की आधी आबादी का प्रतिनिधित्व करनेवाली स्त्री मुख्यधारा से कटी हुई उपेक्षित जीवन जीने के लिए विवश है। पुत्र की आकांक्षा, कन्या भ्रूण हत्या, लिंग-भेद, छेड़छाड़, अपहरण, बलात्कार, देह शुध्दि को लेकर किया जाता मानसिक शोषण बालविवाह, बहुविवाह, दहेज, हलाला, तीन तलाक जैसी कुप्रथाएँ तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अभाव से घिरा स्त्री जीवन दुनिया की आधी आबादी की त्रासदी को बयान करता है। स्त्री जीवन की इस त्रासदी के लिए शोषणकारी पुरुषप्रधान व्यवस्था जिम्मेदार है। पुरुषप्रधान व्यवस्था ने स्त्री को हमेशा दोयम स्थान दिया। उसे तालाब की मछलियाँ समझकर चाहरदीवारी के भीतर कैद किया। आधुनिक काल में शिक्षा से आत्मनिर्भर बनी स्त्री इस कैद से मुक्ति के लिए कलम को हथियार बनाकर अपनी लडाई खुद लड़ रही है। शिक्षा तथा आत्मनिर्भरता स्त्री मुक्ति के लिए अनिवार्य है। महादेवी वर्मा इस संदर्भ में ठीक ही कहती है, - " भारतीय समाज के अध्ययन के बाद मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचती हूँ कि भारतीय स्त्रियों को सबसे पहले आर्थिक रुप से आत्मनिर्भर बनाने की आवश्यकता है। सामाजिक जीवन में पुरुषों के बराबर सामाजिक पहचान और आर्थिक क्षेत्र में पुरुषों के समान आत्मनिर्भरता मूल रुप से ये दो बातें स्त्री मुक्ति के लिए अनिवार्य है। इनसे इतर नारी मुक्ति का कोई और अर्थ नहीं होता।"[1]

सदियों से पुरुषप्रधान व्यवस्था ने स्त्री को गूँगी गुड़िया बनाकर उसकी आवाज को दबाने का काम किया। शिक्षा से आत्मनिर्भर बनी स्त्री पुरुषप्रधान व्यवस्था के छल और छदम के विरुध्द आवाज उठाती हुई अपनी अव्यक्त पीड़ा को बयान कर रही है। डॉ. रमणिका गुप्ता इस संदर्भ में ठीक ही कहती है- " नारी मुक्ति आंदोलन वास्तव में अभिव्यक्ति और निर्णय की स्वतंत्रता का आंदोलन है। समाज में भागीदारी का आंदोलन - जिससे नारियों को सदियों से वंचित रखा गया था।"[2] समकालीन हिंदी कविता के केंद्र मे स्त्री है। समकालीन हिंदी कविता की कवयित्रियों एवं कवियों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से स्त्री संवेदना को विस्तार दिया है। इनमें अनामिका, निर्मला पुतुल, सुशीला टाकभौरे, कुसुम अंसल, रजनी अनुरागी, कात्यायनी, सविता सिंह, नीलेश रघुवंशी, रजत रानी 'मीनू', नागार्जुन, उद्य प्रकाश, अरुण कमल, मंगलेश डबराल, हरिचंद्र पांडेय आदि का महत्वपूर्ण योगदान हैं।

बेटी को पराया धन मानने के कारण ही हमारे देश में कन्या भ्रूण हत्या का प्रमाण बढ़ता ही जा रहा है। महाभारत के समय लड़की को जन्म के पश्चात मौत के घाट उतार दिया जाता था तो आज विज्ञान एंव तकनीकी की इस 21 वीं सदी में उसे माँ के गर्भ में ही समाप्त कर दिया जा रहा है। कन्या भ्रूण हत्याओं के कारण ही समाज में लड़कियों का प्रतिशत घट गया है। पुरुषप्रधान समाजव्यवस्था के खतरनाक जलाशयों के बीच जीवन जीने के लिए संघर्षरत छोटी बेटियों की जद्दोजहद की बड़ी कहानी को नमन करती हुई सविता सिंह कहती है -

"नमन करुँ उन बेटियों को
जो जी लेती है जैसे-तैसे मिला यह जीवन
हो लेती है पार कागज की नौकाएँ होते हुए भी
डूबती है कई
कई गल भी जाती है बीच में

कुछ लगती है पार
खतरनाक इन गहरे जलाशयों के।"[3]

लिंग भिन्नता के कारण ही परिवार में स्त्री - पुरुष विषमता के विषाक्त संस्कार बचपन से ही बच्चों पर किये जाते हैं। जिसके कारण एक ही परिवार के भाई - बहन की शिक्षा -दीक्षा, रहन-सहन, खान-पान तथा सुख-सुविधा में जमीन - आसमान का अंतर पाया जाता है। अपने श्रम से घर में उजाला कर दो परिवारों को जोड़नेवाली लड़कियों का अपना कोई घर नहीं होता। सामाजिक विकास में लड़कियों की महत्त्वपूर्ण भूमिका को हवा, धूप और मिट्टी के माध्यम से अधोरेखित करती हुई अनामिका कहती है -

"लड़कियाँ हवा,धूप, मिट्टी होती है
उनका कोई घर नहीं होता।"[4]

सड़क की तरह नारी जीवन में भी अनेक मोड़ आते हैं। हर मोड पर वह खतरों का सामना करती हुई अपनी जीवन-यात्रा पूर्ण करती है। स्त्री जीवन में बाल्यावस्था, युवावस्था और वृध्दावस्था यह तीन मोड़ पाये जाते हैं। इन तीनों मोडों पर वह क्रमश : पिता, पति, और पुत्र पर निर्भर रहती है। बेटी को बोझ समझने की मानसिकता के कारण उसका जन्म एक चमत्कार माना जा सकता है। बाल्यावस्था से लेकर युवावस्था तक अपनी बेटी की परवरिश करनेवाले माँ-बाप उसका विवाह करके अपने बोझ से छुटकारा पाते हैं। विवाह के समय लड़की को अपना जीवनसाथी चुनने की स्वतंत्रता आज तक नहीं मिल पायी है। 'उतनी दूर मत ब्याहना बाबा!' कविता में निर्मला पुतुल जी ने स्त्री-पुरुष समानता तथा लड़कियों को अपनी अपेक्षाओं के अनुकूल जीवनसाथी चुनने की स्वतंत्रता का समर्थन किया है। वह उस देश में ब्याहना चाहती है जहाँ स्त्री को देवी के रुप में नहीं अपितु मनुष्य के रुप में देखा जाता है। जिसके हाथों ने कभी कोई पेड़ नहीं लगाये, फसलें नहीं उगायी, किसी का बोझ उठाने में सहायक न बननेवाले युवक के साथ वह विवाह नहीं करना चाहती। अपने होनेवाले जीवनसाथी से उसकी कुछ अपेक्षाएँ हैं। जिसके हाथ दूसरों का साथ देने के लिए हमेशा तत्पर है तथा हर सुख-दुख में हमदर्द, हमसाथी, हमसफर बनकर उसके साथ खड़े रहने के लिए जो तैयार है उसी के हाथ में ही अपना हाथ देने की विनंती करती हुई 'उतनी दूर मत ब्याहना बाबा!' कविता में निर्मला पुतुल कहती है -

"और उसके हाथ में मत देना मेरा हाथ
जिसके हाथों ने कभी कोई पेड़ नहीं लगाये
फसलें नहीं उगायीं जिन हाथों ने
जिन हाथों ने दिया नहीं कभी किसी का साथ
किसी का बोझ नहीं उठाया
और तो और!
जो हाथ लिखना नहीं जानता हो 'ह' से हाथ
उसके हाथ मत देना कभी मेरा हाथ!"[5]

विवाह के समय लड़कियों की अपेक्षाओं को अहमियत न दिये जाने के कारण ही उनकी जिन्दगी नरक बन जाती है। अत: लड़की का विवाह उसका दूसरा जन्म माना जाता है। लड़कियों का विवाह करके माँ-बाप तथा परिवारवाले अपना कर्तव्य पूरा हुआ समझते हैं। चाहे विवाह के पश्चात उनकी लाड़ली के साथ जानवरो- सा अमानवीय व्यवहार क्यों न हो? बेटी के सुरक्षित भविष्य के लिए दिया गया दहेज भी उसके उज्ज्वल भविष्य की गारंटी नहीं दे पाता। सभ्य-शिक्षित समाज में दहेज बली की शिकार हुई लड़कियों की संख्या सर्वाधिक है। दहेज के लालचियों व्दारा फूल सी लड़कियों को कहीं तेजाब तो कहीं मिट्टी के तेल से नहलाकर - जलाकर बड़ी बेरहमी से मार दिया जाता

है। उदय प्रकाश समाज में बढ़ती अमानवीयता के इस अंधकार में अपनी मुक्ति का रास्ता तलाशती स्त्री संवेदना को बयान करते हैं-

"एक औरत तेजाब से जल गयी है
खुश है कि बच गयी है उसकी दायी आँख
एक औरत तंदूर में जलती हुई
अपनी उँगलियाँ धीरे से हिलाती है
जानने के लिए
कि बाहर कितना अंधेरा है।"[6]

ससुराल में मिलती नरक यातनाओं से मुक्ति के लिए वह वहाँ से भागना चाहती है। परन्तु विवाह के पश्चात माँ-बाप के घर के दरवाजें उसके लिए बंद हो जाने, परनिर्भरता तथा बिना सहारे के वह भाग भी नहीं सकती। अत: वापस उसी जगह लौटना उसकी अपनी मजबूरी तथा विवशता है। ऐसी पीड़ित स्त्री हर रात एक ही स्वप्न देखती है - 'मुक्ति का स्वप्न'। मुक्ति के लिए छटपटाती स्त्री का यथार्थ चित्रण करते हुए अरुण कमल 'स्वप्न' कविता में कहते हैं, -

"वह बार-बार भागती रही
बार-बार हर रात एक ही स्वप्न देखती
ताकि भूल न जाए मुक्ति की इच्छा
मुक्ति न भी मिले तो बना रहे
मुक्ति का स्वप्न
बदले न भी जीवन तो जीवित बचे बदलने का यत्न"[7]

पुरुषों की तुलना में स्त्री के पास दातृत्व क्षमता अधिक होने से उसका जीवन त्याग एवं समर्पण से भरा पूरा है। छीना-छपटी, देने-पाने के हिसाब की वृत्ति से अनभिज्ञ होने के कारण ही स्त्री हर बार चालाक पुरुषप्रधान व्यवस्था व्दारा ठगी जाती रही है। पुरुषप्रधान व्यवस्था स्त्री को आसानी से ठगने एवं लूटने के लिए अपनेपन का नाटक करती है। इस अपनेपन के पर्दे के पीछे छिपी 'छीनने की दुनिया' की असलियत को बेनकाब करती हुई कुसुम अंसल कहती है -

"मेरे मन ने मेरा साथ नहीं दिया
छीना - झपटी मेरी वृत्ति थी भी नहीं
मैं लौट आई.....
देने - पाने के हिसाब से दूर
उन सबको अविश्वास से देखती हुई
जो अपना इसीलिए बनाते हैं
कि आसानी से लूट सकें ... ।"[8]

पुरुषप्रधान व्यवस्था की इस लूट संस्कृति के कारण ही इस देश में सदियों से स्त्री न घर के भीतर सुरक्षित रही है न बाहर। आए दिन महिलाओं के साथ की जानेवाली छेड़छाड, अपहरण, बलात्कार, जैसी घटनाओं से स्त्री जीवन नरक बनते जा रहा है। 'आखिर कब तक' इस देश के अखबारों का हेड़ लाईन स्त्री उत्पीड़न की घटनाओं से रंगता और सजता रहेगा? निर्मला पुतुल सदियों से चली आ रही स्त्री जीवन की इस दर्दभरी दास्तान को बयान करती हुई कहती है-

" औरतें कब तक शिकार होती रहेंगी
और दुशासन कब तक हारता रहेगा
द्रोपदियों की चीर

आखिर कब तक ? और कब तक?
अखबारों का हेड़ लाइन
भूख से हुई मौत और
बलात्कार की खबरों से
रंगता, सजता रहेगा
आखिर कब तक ... ?"[9]

हमारे देश में स्त्री को लेकर कई विसंगतियाँ पायी जाती हैं। एक और उसे देवी के रुप में पूजा जाता है तो वहीं दूसरी ओर पाँव की जूती समझकर उसे ठोकर मारी जाती है। हमारे देश में महिला सशक्तीकरण की बातें तो बहुत बढ़ा-चढ़ाकर की जाती है, लेकिन वास्तव उसके ठीक विपरीत है। महिला को सशक्त बनाने की अपेक्षा उसे कमजोर बनाकर लूटनेवाली पुरुषप्रधान व्यवस्था की दोगली - नीति तथा महिला सशक्तीकरण का ढोल पिटनेवालों की पोल खोलती हुई रजत रानी 'मीनू' कहती है -

"वहीं एक मजदूर स्त्री
देती है जन्म / बच्चे को
महिला सशक्तीकरण / बोर्ड के ठीक नीचे,
दवा और दाई / के इंतजामों से दूर
अपनी झुग्गी में।।"[10]

मातृत्व एवं ममत्व स्त्री जीवन की अमूल्य निधि है। माँ की ममता और पिता के अनुशासन से ही बच्चों का भविष्य संवरता है। पुरानी और नयी पीढ़ी के बीच सेतु बनकर माँ पति एवं पुत्र को अपने त्याग और समर्पण से जोड़े रखती है। पेड़, शाखाएँ और छाल की प्रतीकात्मकता के माध्यम से टुकड़े-टुकड़े होकर भी अपने परिवार को निखारनेवाली माँ की ममता की महत्वपूर्ण भूमिका को अधोरेखित करते हुए हरिश्चंद्र पांडेय कहते हैं -

"पिता पेड़ है /हम शाखाएँ हैं उनकी
माँ / छाल की तरह चिपकी हुई है पूरे पेड़ पर
जब भी चली है कुल्हाडी / पेड़ या उसकी शाखाओं पर
माँ ही गिरी है सबसे पहले
टुकड़े - टुकड़े होकर ।"[11]

स्त्री को अपने जीवन में बेटी, बहन, पत्नी, माँ आदि कई तरह की भूमिकाएँ निभानी पड़ती है। औरतें हर समय घर में बिखरी होने से घर निखरकर मंदिर बनता है। औरतें घर की तमाम कमजोरियों को आड़ देती हुई पर्दे की तरह टंगी रहकर अपनी जिम्मेदारियों को बखूबी निभाती है। दुर्भाग्य से स्त्री की इन महत्त्वपूर्ण भूमिकाओं को पुरुषप्रधान व्यवस्था नजर-अंदाज करती है। परिवार, समाज एवं राष्ट्र-निर्माण में स्त्री की महत्वपूर्ण भूमिका को अधोरेखित करती हुई रजनी अनुरागी कहती है -

"घर में हर कहीं बिखरी होती हैं औरतें
लेकिन उसका कोई घर नहीं होता
टंगी रहती हैं औरतें पर्दे की तरह
आड़ देती हुई घर की तमाम कमजोरियों को
तरह- तरह की भूमिकाएँ हैं

औरत के लिए
मगर औरत की कोई भूमिका नहीं।"[12]

सदियों से पुरुषप्रधान व्यवस्था ने स्त्री को चाहरदीवारी के भीतर ही कैद रखा। अपने परिवार तथा परिवेश से मिले संस्कारों ने उसे गूँगा तथा अपाहिज बना दिया। गूँगापन नारी का सबसे बड़ा अलंकार माना जाने से वह गूँगी गुड़िया बनकर जीती रही। उसकी मुक्ति के स्वप्न के पर काट दिये गये।अत: आज की स्त्री इस प्रचलित शोषणकारी परिपाटी के विरुध्द विद्रोह कर अपनी चुप्पी को तोड़ती हुई चीखती है। इसके साथ ही सदियों से उसे अपाहिज बनाए रखनेवाली पुरुषप्रधान व्यवस्था के सहारे की बैसाखियों को भी वह तोड़ती है। शिक्षा से आत्मनिर्भर बन अपने पैरों पर खड़ी आज की स्त्री अपने परों के सहारे खुले आसमान की खुली छत पर मुक्त होकर उड़ना चाहती है। सुशीला टाकमभौरे 'विद्रोहिणी' कविता के माध्यम से स्त्री की मुक्ति - कामना को बयान करती हुई कहती है-

"प्रचलित परिपाटी से हटकर
मैं भागती हूँ - सब ओर - एक साथ
विद्रोहिणी बन चीखती हूं
गूंजती है आवाज सब दिशाओं में
मुझे अनन्त असीम दिगन्त चाहिए
छत का खुला आसमान नहीं
आसमान की खुली छत चाहिए
मुझे अनन्त आसमान चाहिए ।"[13]

निष्कर्ष :-

समकालीन हिंदी कविता में स्त्री संवेदना अपने चरम रुप में पायी जाती है। समकालीन हिंदी कविता के रचनाकारों ने स्वानुभूति और सहानुभुति के आधार पर अपनी रचनाओं के माध्यम से स्त्री जीवन में आनेवाले विभिन्न मोड़, इन मोड़ो से गुजरती हुई उसकी उतार - चढाव भरी संघर्षयात्रा, पुरुषप्रधान व्यवस्था के दोहरे मानदंडों की यातना से उपजी चेतना को आत्मसात करते हुए स्त्री संवेदना को विस्तार दिया है। स्त्री संवेदना के इसी विस्तार ने आज स्त्री मुक्ति आंदोलन का रुप धारण कर लिया है। समकालीन हिंदी कविता ने शोषणकारी पुरुषप्रधान सभ्यता एवं संस्कृति के रुख मोड़े हैं साथ ही बेरंग हुई दुनिया में स्त्री संवेदना के रंग भरकर समाज की तस्वीर बदलने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। अंत में सुशीला टाकभौरे के शब्दों में सिर्फ इतना ही कहा जा सकता है कि -

"सभ्यता संस्कृति के रुख मोड़े हैं
मैंने कुछ शब्द जोड़े हैं।"

संदर्भ :-

१. डॉ.प्रभा दीक्षित - स्त्री अमिता के सवाल, पृ.35
२. डॉ.रमणिका गुप्ता - स्त्री विमर्श, पृ.79
३. सविता सिंह - अपने जैसा जीवन, पृ.45
४. अनामिका - कहती हैं औरतें, पृ.152
५. निर्मला पुतुल - नगाड़े की तरह बजते शब्द, पृ.50
६. उदय प्रकाश - कवि ने कहा, पृ.98

७. अरुण कमल - पुतली में संसार, पृ.24-25
८. कुसुम अंसल - समय की निरंतरता में, पृ.75
९. निर्मला पुतुल - बेघर सपनें, पृ.68
१०. संपा.राम चंद्र, प्रवीण कुमार - दलित चेतना की कविताएँ, पृ.167
११. हरिश्चंद्र पांडेय - मेरी चुनिंदा कविता, पृ.42
१२. रजनी अनुरागी - बिना किसी भूमिका के, पृ.32
१३. संपा.राम चंद्र, प्रवीण कुमार - दलित चेतना की कविताएँ, पृ.111